

8. प्रस्तावना में उल्लिखित आदर्श - न्याय, स्वतंत्रता, समता और
बंधुत्व - एक दूसरे पर निर्भर हैं। भारत में इन आदर्शों की
प्राप्ति की सीमा का आलोचनात्मक मूल्यांकन करें।

अदि हम एन.ए. चालटवीवाला कलम जी के वक्तव्यों का
आधार मानें तो हम समझेंगे की प्रस्तावना संविधान का "परिचय
पत्र" है। के.एम. मुखी जी ने प्रस्तावना को राजनीतिक कुंडली
कहा था, और इसी प्रकार अनेकों राजनीतियों ने इसे अनेकों
नाम, उपनाम अथवा परिभाषाएं दीं।

वास्तव में अदि हम प्रस्तावना पढ़ें और समझें तो हम
भी यही पाएंगे की यह संविधान की संक्षिप्त वर्णित करती है।
संविधान के उद्देश्य, उसमें उल्लिखित न्याय, स्वतंत्रता, समता आदि
शब्दों एवं शासन प्रणाली के स्वरूपों तथा संविधान की अभिप्रेति
करने की विधि का उल्लेख करती है। इसे हम एक प्रकार से
"मिनि संविधान" भी कह सकते हैं।

जात यदि प्रस्तावना के मूल शब्दों के एक दूसरे पर
निर्भरता की ही तो काफी दूर तक यह पाया जा सकता है कि
सभी शब्द भंडार, अथवा पूर्णतः एक दूसरे पर निर्भर हैं।
उदाहरण - न्याय के बिना स्वतंत्रता अर्थहीन है।

क्या हम वैसी स्वतंत्रता की अर्थपूर्ण मान सकते हैं, जहां
न्याय का कोई स्थान ही न है ?

"अनु - 19 (1) (क)" हमें अभिव्यक्ति एक वाक की स्वतंत्रता
प्रदान करता है, परंतु यदि यहाँ न्याय का आभाव ही तो लोग
एक दूसरे विरुद्ध वाक्यों का प्रयोग प्रारंभ कर देंगे और व्यवस्था
ही अस्त व्यस्त हो जायेगी।

किंतु जब भारत में इन आदर्शों की प्राप्ति की बात आती है, तो हम की पल बहलते हैं और सोचते हैं, क्या यह अधिकार, क्या यह स्वतंत्रता, समानता हमें प्राप्त है? कभी उत्तर हाँ एवं कभी न की रूप में प्रकट होता है।

हमें प्रदान की गई स्वतंत्रताओं में - "भारत में अवाध रूप की संघटना (अनु-119)(1)(ख)" भी एक स्वतंत्रता है, एवं निःसंदेह हमें यह स्वतंत्रता प्रदान भी की गई है, किंतु फिर वही आठ दिनों मौख लिचिंग आदि जैसे समाचार सामने आते हैं और न्यायालयों में एक नई "कैस फाइल" खुल जाती है, जो न्यायालयों का वास्तविक माह बढ़ाती है।

सरकार एवं संविधान ने हमें वाक एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता दी है, परंतु आज भी लोग न्यायालय में गवाही देते हुए, पुलिस की अपना बयान देते हुए धक्काते हैं, भयभीत होते हैं, जो कहीं न कहीं स्वतंत्रता एवं न्याय के आदर्शों की प्राप्ति करने में हमारी असफलता दर्शाती है। किंतु इसका एक और पहलु है, जिससे हम मुझे नहीं मोड़ सकते; और वह है - "अन्याय की विरुद्ध हमारी आवाज।" भारत की जनता अब धीरे-धीरे अपने विरुद्ध अन्यायों की पहचान करने में सक्षम है, और उसके खिलाफ अपनी आवाज बुलंद करने में भी सक्षम है, घटना प्रदर्शन एवं न्यायपूर्ण तरीकों से अपनी भावना भी व्यक्त कर लेते हैं लोग, तो अभी की परिस्थितियों की ध्यान में रख कर यह कहा जा सकता है कि हम अंशतः सफल हैं एवं प्रयासरत हैं।

समानता का बंधुत्व से जुड़ाव भी कुछ इसी प्रकार का है, यदि हम एक दूसरे की समान नहीं समझेंगे तो हम बंधुत्व कैसे बढ़ाएंगे?

संविधान की प्रस्तावना हमसे कहती है, कि - "हम भारत के लोग" अर्थात् "हम सभी"। ब्राह्मण से लेकर शूद्र तक एवं धनवान से लेकर निर्धन तक। प्रस्तावना ने आरंभ ही हम भारतीयों को "हम" के सूत्र में बांध दिया और बंधुत्व की शुरुआत की और जब हम आज अपने संविधान की ओर बढ़ते हैं तो हमें मौलिक अधिकारों के रूप में भी समानता प्रदान की गई है और निःसंदेह कदम-कदम पर भारत की वैसा बनाने का ही प्रयास किया गया है, जैसा कि संविधान निर्माताओं का सपना था।

किंतु यहाँ प्रश्न यह है कि क्या हम इस प्रयास में सफल हैं ? अगर फिर वही कुछ हाँ और कुछ ना । ओलंपिक में मंडल लानी भारतीय महिलाओं ने लिंग समानता का प्रमाण तो बहुत अच्छे से दिया किंतु आज भी भारत के कई राज्यों में कन्या श्रृणु हत्या एक गंभीर समस्या है । समानता का यह अलग ही विरोधाभास है, किंतु हम यह भी नहीं कह सकते हैं कि हम समानता और वंशुत्व बढ़ाने में असफल रहे ।

"हम प्रयासरत हैं", "हमने अब तक कितना प्राप्त किया और हमारे लिए कितना परिश्रम है" इन प्रश्नों को यदि एक तरफ रखकर इसका सकारात्मक पक्ष देखें तो हम पाएंगे कि भारत में समानता भी है और वंशुत्व भी . हम स्वतंत्र भी हैं, और हमें न्याय मिलना जरूर है । प्रस्तावना में उल्लिखित आदर्शों को कुछ दूर तक हमने प्राप्त कर लिया एवं कुछ में "हम प्रयासरत हैं ।"